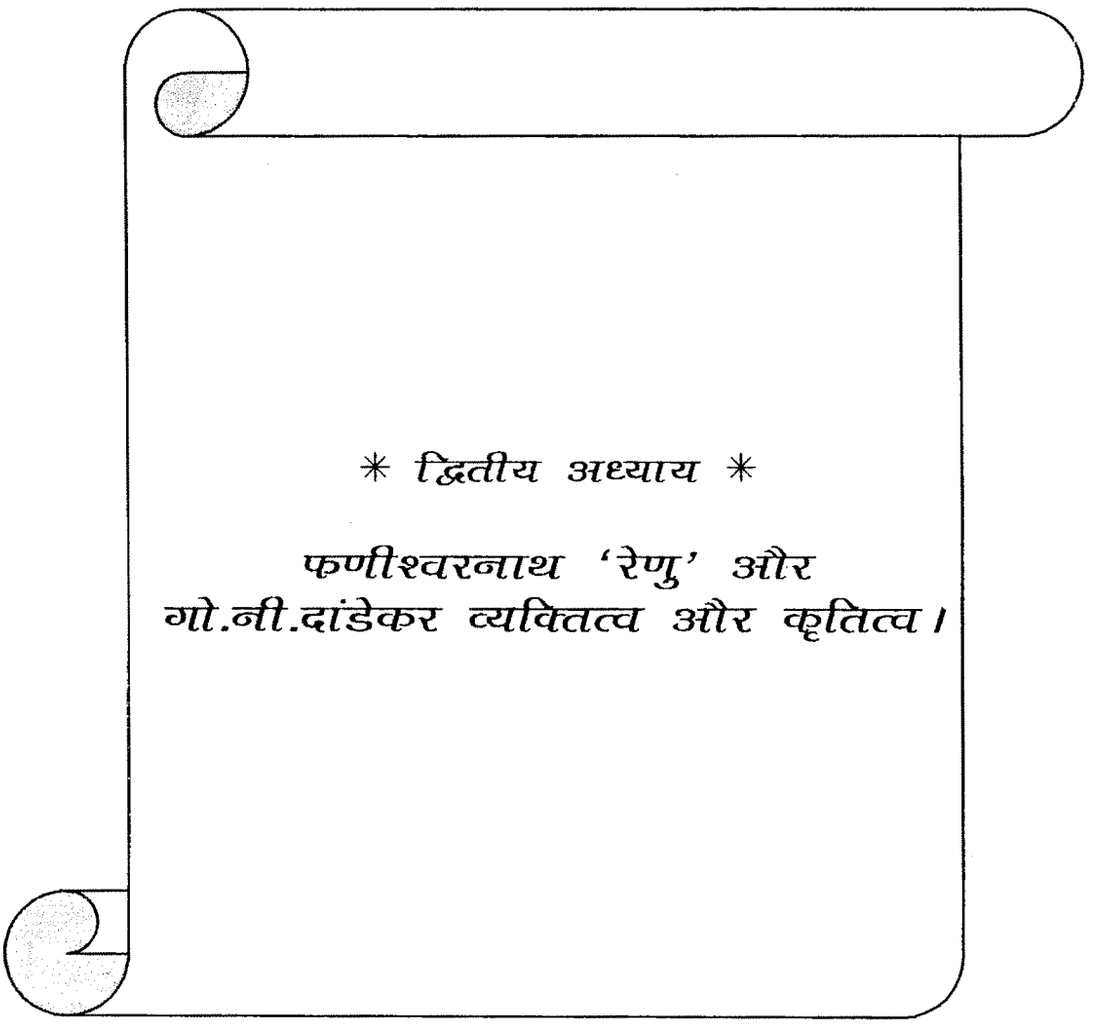

* द्वितीय अध्याय *

फणीश्वरनाथ 'रेणु' और गो.नी.दांडेकर व्यक्तित्व और कृतित्व।

: द्वितीय अध्याय :

फणीश्वरनाथ 'रेणु' और गो. नी. दांडेकर का व्यक्तित्व और कृतित्व

2.1 फणीश्वरनाथ 'रेणु' का व्यक्तित्व :-

हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध आँचलिक साहित्यिक फणीश्वनाथ 'रेणु' का जन्म 4 मार्च 1921 को बिहार प्रांत के अत्यंत पिछडे और शोषित पूर्णिया जिले के औराही हिंगना नामक ग्राम में हुआ।

रेणु के पिताजी श्री. शिलानाथ जी मंडल धानुक जाति के संपन्न कृषक होने के साथ राष्ट्रीय विचारधारावाले आर्य समाजी थे। माताजी श्रीमती पानोदेवी धर्मभीरू और ईश्वरभक्त आदर्श गृहिणी थी।

अपने गाँव में बाल्यावस्था के दिनों रेणु की आर्थिक स्थिति कमजोर रही। उन दिनों खेती की कोई खास सुविधा न होने के कारण उनके परिवार के पास जमीन होकर भी आर्थिक लाभ विशेष न था। जब 1950 के बाद खेती में कुछ सुधार हुए तो उनकी आर्थिक स्थिति में थोडा सुधार होने लगा।

रेणु का मूल नाम फणीश्वरनाथ मंडल था। उनका नाम रेणु कैसे हुआ इसके बारे में अनेक दिलचस्प दास्ताने कही जाती हैं। पर इसके बारे में स्वयं रेणु ने लिखा है कि, ''रेणु नाम श्री. कृष्णप्रसाद जी कोईराला का दिया हुआ है।''[1] इसप्रकार रेणु के पिताजी के मित्र द्वारा उनका यह नामकरण हुआ है, जो अंत तक उनके साथ जुडा रहा।

2.1.1 रेणु का गार्हस्थ जीवन :-

रेणु के तीन विवाह हुए। इसके लिए ग्राम्य परंपरा, समाजवादी विचारधारा का प्रभाव तथा भावनाओं का आक्रमण आदि बातें जिम्मेदार रही हैं।

ग्राम्य परंपरा के नुसार 1939 में 18 वर्ष की उम्र में उनका विवाह बलवा ग्राम के श्री. काशीनाथ मंडल की कन्या सुलेख देवी से संपन्न हुआ।

अशिक्षित सुलेखदेवी के साथ उनका गार्हस्थ जीवन सामान्य स्तर का रहा। बाद में लकवा तथा

मस्तिष्क की बीमारी से ग्रस्त हो 1950 के आसपास वे परलोक सिधार गयी। बीमारी से त्रस्त सुलेखदेवी का जीवित रहना न रहना समान ही था। वे अपनी जीवनी शक्ति समाप्त कर चुकी थी तो उस वक्त परिवार जनों के बढते दबाव से रेणुने दुसरा विवाह करना स्वीकार किया। उन दिनों समाजवादी विचारधारा से बहुत प्रभावित तथा क्रांतिकारी विचारों से ओतप्रोत रेणु ने चुमौना महम दिया ग्राम की श्री. खूबलाल विश्वास की विधवा बेटी पद्मादेवी से 1949 में विवाह किया।

पूर्व पत्नी की तरह अशिक्षित पद्माजी के साथ रेणु का दांपत्यजीवन सफल रहा। रेणु के साहित्यिक तथा व्यस्त जीवन में वे कभी रूकावट नहीं बनी और न ही रेणु को घरेलु चिंताओं से ग्रस्त होने दिया। रेणु के घर का सारा प्रबंध स्वयं उन्होंने अपने ऊपर लिया उसे खूबी से निभाया। साथ में उन्हें रेणु के प्रति कभी कोई शिकायत नहीं रहीं। रेणु के लिए अशिक्षित पद्मादेवी का समर्थ साथ गार्हस्थ जीवन को संभालने तक ही रहा पर रेणु के साहित्यिक जीवन के लिए उनकी तृतीय पत्नी लतिकाजी का सहयोग अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा। रेणु की कीर्ति पताका फहराने में लतिकाजी का योग अत्यंत महत्त्वपूर्ण और सतत कर्म प्रेरक रहा है।

स्वतंत्रता आंदोलन में बंदी बनाये रेणु को प्रकृति अस्वास्थ्य के कारण 1944 में भागलपुर जेल से पटना अस्पताल में प्लूरिसी मरीज के रूप में दाखिल किया गया। वहाँ उनकी पहचान परिचारिका लतिका राय चौधरी से हुई, जिन्होंने उनकी दिलोजान से सेवा की।

रेणु ने एक जगह लिखा है,

''प्रेम में पड जाने का एकमात्र स्थान आज भी अस्पताल है।''[2]

रेणु का यह सिद्धांत कथन उनके बारे में योग्य सिद्ध हुआ। उन्हें लतिकाजी से प्यार हो गया। रेणु की जिद तथा रेणु से प्यार आदि बातों के कारण लतिकाजी ने 1952 में रेणु से विवाह किया। शादी के उपरांत रेणु के द्वितीय विवाह तथा उनकी बीती हुई जिंदगी के बारे में जानकारी मिलने पर भी वे रेणु से गुस्सा नहीं हुई। उन्होंने सच्चे मन से रेणु के जीवन को संभाला। कभी किसी प्रकार की असंतुष्टि का परिचय नहीं होने दिया। रेणु की प्रौढ कृतियों की सर्जना तथा प्रकाशन में लतिका जी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। रेणु के साहित्यिक जीवन में लतिकाजी प्रेरणा के रूप में खडी रही हैं।

इस प्रकार पद्माजी तथा लतिकाजी जैसी साक्षात त्याग की मूर्ति बनी भारतीय स्त्रियों को पाकर

रेणु का जीवन धन्य हो गया। रेणु को कीर्ति के शिखर पर ले जाने में इन स्त्रियों का त्याग महत्त्वपूर्ण रहा है। इन स्त्रियों की मूक साधना से रेणु की साहित्य साधना सफल बन सकी है।

रेणु के आठ संतानें थीं। प्रथम पत्नी से उत्पन्न एक पुत्री तथा द्वितीय पत्नी से उत्पन्न सात संतानें जिनमें चार पुत्रियाँ तथा तीन पुत्र थे। इन संतानों को रेणु ने प्यार तो खूब दिया पर पिता के दायित्व का निर्वाह करने में वे शायद कुछ कम साबित हुए हैं। क्योंकि इतने ख्याति प्राप्त लेखक होने के बाद भी उन्होंने बच्चों की शिक्षा-दीक्षा पर विशेष ध्यान नहीं दिया।

2.1.2 शिक्षा - दीक्षा :-

रेणु की प्रारंभिक शिक्षा की शुरूवात घर में ही हुई। हिंगना में श्री. कुसुमलालजी मंडल नाम के अध्यापक घर में आकर ही रेणु को पढाया करते थे। घर में ही अक्षर बोध होने के बाद कुछ दिन अररिया के विद्यायल में शिक्षा ग्रहण करने के बाद सिमरबनी और फारविसगंज में शिक्षा प्राप्त की। रेणु विद्यालय में तो जाते रहे पर शिक्षा के प्रति उनकी विशेष रूचि न थी। वे अक्सर स्कूल से भाग जाते जिसके कारण उन्हें कई बार पिताजी के क्रोध का सामना करना पड़ा। गणित में उनकी विशेष रूप से अरूचि थी। फिर भी अन्य विषयों के अध्ययन तथा समाज की स्थिति के अध्ययन में वे दक्ष थे।

ऐसे ही एक दिन संयोगवश प्रथम श्रेणी के रेल डिब्बे में उनकी मुलाकात विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला से हुई जो नेपाल के गांधी इस नाम से विख्यात तथा नेपालके शैक्षणिक और राजनैतिक जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखनेवाले कृष्णप्रसाद कोइराला के पुत्र थे। विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला तथा रेणु के पिता दोनों पुराने मित्र थे। उन्होंने वहाँ के आदर्श विद्यालय में रेणु को दाखिल कर दिया जहाँ से रेणुने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। उसके बाद वे काशी हिंदू विश्वविद्यालय में दाखिल हुए पर उनके व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन ने उन्हें किताबी शिक्षा पूरी करने का मौका नहीं दिया। वे अपनी पढाई छोड राजनीति में सक्रिय हुए।

2.1.3 रेणु का राजनीतिक जीवन :-

कोइराला परिवार में रेणु के व्यक्तित्व का विकास हुआ। उदार राष्ट्रीय विचारधारा तथा मानवीय कल्याण की भावना से ओतप्रोत कृष्णप्रसाद कोइराला का प्रभाव रेणु पर पड़ा। उसी परिवार में उन्हें क्रांति के संस्कार प्राप्त हुए। रेणु के परिवार का स्वतंत्रता आंदोलन में फरार नेताओं तथा कार्यकर्ताओं को प्रश्रय देकर स्वतंत्रता आंदोलन में अप्रत्यक्ष रीति से सहयोग रहा था। स्वयं रेणुने इस विषय में स्पष्ट किया है कि,

''मेरे जन्म से पूर्व ही तिलक स्वराज फंड वसूलने के दिन से ही इलाके में मेरा परिवार राष्ट्रीय परिवारों में से एक समझा जाता रहा है।''[3]

इसप्रकार किशोरावस्था से ही रेणु के मनोमस्तिष्क पर राष्ट्रीयता का गहरा नशा छा उनके भीतर एक क्रांतिकारी जन्म ले रहा था। उसी समय सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक परिस्थितियाँ अपना अलग अलग प्रभाव रेणु के युवा मनपर छोड रही थीं, जिसके परिणामस्वरूप पढ़ाई छोड रेणु ने सक्रिय राजनीति में हिस्सा लिया। इस तरह 1939 में उनके राजनीतिक जीवन का प्रारंभ हुआ। जयप्रकाश नारायण, श्री. बी.पी. सिन्हा आदि लोगों का उन्हें साथ रहा। इस काल में उन्होंने 1941 को व्यक्तिगत सत्याग्रह में हिस्सा लिया। अंग्रेज सरकार के कारनामों को विफल करने में सहयोग दिया। मुजफ्फरपुर के किसान काँग्रेस में सहयोग लिया। 1942 के आंदोलन में वे बडे सक्रिय रहे। जयप्रकाश नारायण के संपर्क में आने से समाजवादी विचारों से ओतप्रोत हो एक हस्तलिखित पत्रिका का प्रकाशन किया। उनकी ही प्रेरणा से सोशालिस्ट पार्टी का कार्य किया। स्वतंत्रता आंदोलनों में सक्रिय होने के कारण अनेक बार उन्हें जेलों में जाना पड़ा। उन्होंने उसे कारावास न मान राजनीतिक तथा सामाजिक चेतना केंद्र के रूप में स्वीकार किया। नेपाल के कोइराला परिवार के घनिष्ठ संबंधों तथा कृष्णप्रसाद कोईराला के राजनीतिक जीवन से प्रभावित रेणु ने 1950 के नेपाल मुक्ति संग्राम में सशस्त्र सैनिक की भूमिका का निर्वाह करते हुए नेपाली काँग्रेस के प्रचार विभाग और आकाशवाणी संगठक के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद वे सक्रिय राजनीति से अलग हो गये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रेणु अपने राजनीतिक जीवन में लोभ से हमेशा दूर रहे उन्होंने राजनीति को व्यवसाय के रूप में नहीं स्वीकारा। केवल युग सत्य के रूप में राजनीति का स्वीकार किया।

2.1.4 रेणु का स्वभाव वैशिष्ट्य :-

रेणु मूलत: रुमानी प्रकृति के व्यक्ति थे। उनके रहन-सहन में एक निरालापन था। साजशृंगार करने में वे डेढ़-डेढ़ घंटा लगा देते थे। हमेशा साफ प्रेस किये हुए वस्त्र पहनते थे। बालों के प्रति उनकी विशेष रूचि थी।

उनके खान-पान में भी एक रईसी थी। इसमें उनकी अपनी एक रूचि और शौक थे। उन्हें सिगरेट पीना, शराब पीना-पिलाना आदि का शौक था। कोका-कोला उनका प्रिय पेय पदार्थ था।

इस प्रकार खान-पान, रहन-सहन, शौक-मौज में वे किसी शहंशाह से अपने को कम नहीं समझते थे।

रेणु को पशु-पक्षियों के प्रति गहरा लगाव था। तथा उनके बारे में गहरी जानकारी रखते थे।

उन्हें ईश्वर के प्रति बड़ी आस्था थी। रामकृष्ण परमहंस के जीवन तथा सिद्धातों का उनपर बड़ा प्रभाव था। उनके प्रति अगाध श्रद्धा थी। माँ काली के प्रति रेणु का निश्चल समर्पण था।अन्य देवी देवताओं तथा काशीधाम पर उनकी श्रद्धा थी। गंगा के प्रति उन्हें बडा लगाव था। इसके साथ वे बडे तांत्रिक थे। स्मशान साधना भी किया करते थे।

अत: धर्म पर इतनी आस्था होते हुए भी रेणु की धर्म विषयक विचारणा संकीर्णता के दायरे में आबद्ध नहीं रही।

रेणु का व्यक्तित्व अनेक गुणों से परिपूर्ण था। वे विनोदप्रिय थे। हाजिरजबाबी थे। रेणु में बुद्धि कौशल्य, साहसिकता तथा कर्मठता थी जिसका परिचय हम उनके राजनीतिक जीवन में प्राप्त करते हैं। वे हृदय से अत्यंत भावुक, निराभिमानी थे।

उन्हें अपने गाँव के प्रति बेहद लगाव था। एक बार शहर से गाँव जाने पर वापस आने का नाम नहीं लेते थे। उनका मन गाँव की मिट्टी में ऐसा घुलमिल जाता कि मिट्टी का एक एक कण उन्हें गाँव में रूकने को बाध्य करता।

इस तरह रेणु का व्यक्तित्व एक खुला हुआ व्यक्तित्व था। उनके व्यक्तित्त्व की यही विशेषता थी कि वह किसी एक छोर से बँधा हुआ नहीं था और न ही उन्हें कोई बांधने का सामर्थ्य रख सका। उनका व्यक्तित्व इतना विशाल था कि जिसमें मानव जीवन की नाना छबियों को सहजता से देखा जा सकता था। रेणुने लिखा है,

''जीवन भर दुनिया की हर चीज और हर व्यक्ति में अपना प्रतिबिंब खोजता रहा, देखता रहा, मुग्ध होता रहा।''[4]
अत: रेणु के व्यक्तित्व रूचि दर्पण में लोगों को अपना ही प्रतिबिंब दृष्टिगोचर होगा।

हिंदी उपन्यास साहित्य को सही मायने में आँचलिकता की नई राह पर ले जानेवाले इस श्रेष्ठ

साहित्यिक का 56 वर्ष की आयु में 11 अप्रैल 1977 में देहांत हो गया। अज्ञेयजी कहते हैं , ''यश: शरीर और तेज: शरीर रेणु हमारे बीच और गहरे व्याप्त रहे हैं, नित्य हैं।''[5]

इस प्रकार यह श्रेष्ठ साहित्यिक मरकर भी अमर हो गया है।

2.2 रेणु का कृतित्व :-

प्रसिद्ध आंचलिक साहित्यिक फणीश्वरनाथ रेणु ने साहित्य जगत में कविता के माध्यम से प्रवेश किया। लेकिन उनका कोई कविता संकलन प्रकाशित नहीं हुआ है और न ही उनकी कोई तत्कालिन बहुत प्रसिद्ध आखिल भारतीय स्तर की पत्रिका में कविताएँ प्रकाशित हुई हैं। यदि उनकी डायरी तथा बिहार और पटना के अन्य नगरों के क्षेत्रीय समाचारपत्रों, साहित्यिक पत्रिकाओं से प्राप्त कविताएँ 'आगा खाँ के राजमहल में', 'फागुनी हवा', 'जागो मन के सजग पथिक हो', 'इमर्जेंसी', 'बहुरूपिया', 'सुंदरियों' आदि को देखें तो उन कविताओं के सहजता, सुबोधता तथा स्पष्टता से हम रेणु की श्रेष्ठता को जान जाते हैं। पर बिहार की साहित्यिक राजनीति ने उन्हें कवि के रूप में स्थापित नहीं होने दिया। इस प्रकार रेणु के कविताओं का लेखन तिथि के साथ संकलन न होने के कारण उनका सही मूल्यांकन नहीं हो सकता।

साहित्य जगत में रेणु का पदार्पण 'मैला आँचल' के प्रकाशनोपरांत माना जाता है परंतु रेणु ने कविता के माध्यम से साहित्य जगत में प्रवेश कर उसके बाद पाँचवे दशक से कहानीकार के रूप में अपने साहित्य लेखन का प्रारंभ किया।

रेणु को कहानी लेखन की प्रेरणा श्री. सतीनाथ भादुडी से मिली। 1953 में प्रकाशित 'बटबाबा' नामक उनकी प्रथम मानी जानेवाली कहानी 'विश्वमित्र' में प्रकाशित हुई। अत: रेणु की कहानियों की शुरूवात स्वतंत्रतापूर्व से प्रारंभ हो, लगभग 1970 तक उनका लेखन चलता रहा। रेणु लिखित कहानियों को स्थूल रूप से दो भागों में विभाजित कर सकते हैं एक आँचलिक कहानी और दूसरी अनांचलिक कहानी।

2.2.1 रेणु की आँचलिक कहानियाँ :-

रेणु की आंधिकांश कहानियाँ ग्रामीण क्षेत्रों से संबंधित रही हैं। उन्होंने अपनी कहानियों के

कथानक भी उसी ग्राम्य भूमियों से लिए हैं।

''रेणु का कथाक्षेत्र अधिकांशत: बिहार का ही एक भूखंड है और उस खंड के परिवेश को उन्होंने गहरी आत्मीयता और तल्लीनता के साथ अंकित किया है।''[6]

इस प्रकार रेणुने बहुत परिश्रम से अपनी कहानियों में अंचल के परिवेश के जीवित बनाया है। उनकी कहानियाँ 'ठुमरी' (1959), 'आदिम रात्रि की महक' (1967) तथा 'आगिनखोर (1973) इन संकलनों में संकलित हैं। इन संकलनों में कुल मिलाकर चौंतीस कहानियाँ हैं। 'अच्छे आदमी' तथा 'एक श्रावणी दोपहर की धूप' अप्रकाशित पुस्तकें हैं।

रेणु की कहानियों को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। एक आँचलिक और दो अनांचलिक। उनकी आँचलिक कहानियों में तीसरी कसम, लाल पान की बेगम, रसप्रिया, पंचलाईट, सिरपंचमी का सगुन, तीर्थोदक, एक आदिम रात्रि की महक, गप्प का शीर्षक, भित्ति चित्र की मयूरी, संवदिया, हाथ का जस बाक का सत', 'एक रंगबाज गाँव की भूमिका' आदि महत्त्वपूर्ण कहानियाँ हैं।

'तीसरी कसम' में कथा नायक हीरामन अपनी तीनों कसमें पूर्णिया अंचल में उठता है। याने उसका कार्यक्षेत्र पूर्णिया अंचल के इर्दगिर्द का ही है। इसमें लेखक ने फारबिसगंज, छत्तापुर, पचीरा, तेगच्छिया, कंजरी नदी, मदनपुर, बिसनपुर, नननपुर, परमान नदी आदि अनेक स्थलों के चित्रण द्वारा वहाँ की समूची संस्कृति तथा भाषागत इकाई द्वारा एक बृहद चित्र निर्माण किया है।

''लाल पान की बेगम' में पूर्णिया अंचल के ग्रामवासियों की जीवनचर्या अभाव और दैन्यता में गुजरते हुए उनके दिनों की व्यथाकथा तथा आशा-निराशा के मध्य झूलते हुए उनके जीवन को रेणुने वाणी प्रदान की है।

'रसप्रिया' में किसी समय में लोकप्रिय विद्यापति नाच तथा रसप्रिया गान के एक कलाकार के उपेक्षित जीवन को चित्रित कर उसके रूप में अंचल की करूण व्यथा को प्रदर्शित किया है।

'भित्ति चित्र की मयूरी' में लेखक ने अपनी धरती और परिवेश के चित्र की पृष्ठभूमि में अंकित कर उस धरती को लोककला और लोकसंस्कृति के केंद्र में परिवर्तित कर 'मधुबनी आर्ट सेंटर' की स्थापना करने

के विचार को महत्त्व दिया है।

'एक आदिम रात्रि की महक' में प्रेम के रागात्मक पक्ष को स्पष्ट करते हुए करमा नामक एक शोषित व्यक्ति का चित्रण कर लेखकने आज भी हमारे समाज में ऐसे हजारों शोषित लोग हैं जो अपनी मूर्खता तथा अज्ञानता का फल भोग रहे हैं इसकी ओर निर्देश किया है।

'एक रंगबाज गाँव की भूमिका' में एक अचंल का विस्तृत वर्णन कर उस गाँव की समस्त विशेषताओं का चित्रण किया है। 'पंचलाईट' में पेट्रोमेक्स जलाने की समस्याद्वारा गाँव की पार्टीबाजियों , दलबादियों, जातिवाद और टोलेबाजी के क्रियाव्यापार को उजागर किया है। 'सिरपंचमी का सगून' में ग्राम्यजीवन में कृषिकार्य के मुहूर्त के लिए सिरपंचमी के दिन का महत्त्व तथा उस पूर्व की महत्ता, पूजा विधि आदि का विस्तृत वर्णन किया है।

'हाथ का जय बाक का सत' में भी ग्रामीण जीवन को महत्त्व दिया है। 'गप्प का शीर्षक' में ग्रामीण परिवेश को महत्त्व दिया है पर यह अपूर्ण कहानी है। इसके साथ संबदिया, जाहिदअली आदि आँचलिक कहानियाँ हैं।

इस प्रकार इन आँचलिक कहानियों में रेणु ने ग्राम जीवन को मुखरित किया है। रेणु की कहानियाँ मैथिल अंचल से संबंधित हैं। उनकी इन आँचलिकता प्रधान कहानियों में पूर्णिया अंचल जीवित हो उठा है। अपने गीतों के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध मैथिली अंचल से संबधित इन कहानियों में बारहमासा, बिरहगीत, विदेसिया नाच, होली गीत इस प्रकार के गीतों को स्थान मिला है। इनकी ये आँचलिक कहानियाँ गीतिधर्मा हैं। उनकी कहानियों का आधार आँचलिकता होते हुए भी पात्रों का व्यक्तित्व विनष्ट नहीं हुआ है और न ही घटनाओं के वर्णन में बाधा आयी है।ग्रामीण जीवन का अक्षुण्ण प्रभाव लोकमानस पर छोडने में ये कहानियाँ सक्षम हैं।

आँचलिकता के अतिरिक्त अन्य कहानियों में कथानक भिन्न भिन्न रूप में उभरकर सामने आये हैं। उन्होंने समाज के मध्य या निम्न वर्गीय व्यक्तियों की जीवन अनुभूतियों और समस्याओं का अपने कथानक का विषय बनाया है। इसके अंतर्गत निम्न कहानियों को रखा जा सकता है। 'कसबे की लडकी' इस चरित्र प्रधान कहानी में सामाजिक भ्रष्टता को लक्ष्य किया है। 'रतनी' इस चरित्रप्रधान कहानी में प्रेम के रागात्मक पक्ष को स्पष्ट किया है। 'एक श्रावणी दोपहरी की धूप' इस भावप्रधान कहानी में पति-पत्नी संबंधों को व्यक्त किया है। 'फुर्ररर'

किशोर जीवन की भावनाओं को व्यक्त करनेवाली भावप्रधान कहानी है। 'ठेस' एक भावप्रधान कहानी है।

'जैव' पति पत्नी संबंधों को व्यक्त करनेवाली एक विचारप्रधान कहानी है।

'जलवा' यह विचारप्रधान कहानी राजनीतिक भ्रष्टता और अवसरवादिता के मध्य ईमानदार देशसेवकों की दुर्दशा का करूण चित्र उपस्थित करती है।

'आत्मसाक्षी' इस विचारप्रधान कहानी में वामपंथी ताकतों की चर्चा करने के साथ पार्टी के सामान्य लेकिन ईमानदार कार्यकर्ता की उपेक्षा से हुई वेदना को दर्शाया है।

'अक्ल और भैंस', 'दस गज्जा के इस पार और उस पार', 'अग्नी संचारक', 'मन का रंग' इन कहानियों में लेखक ने हास्य और व्यंग्य के माध्यम से सामाजिक व्यवस्था और विसंगतियों पर करारी चोट की है।

'संकट' कहानी में राजनैतिक क्षेत्र की विसंगतियों को प्रकट किया है।

'लफडा' कहानी में सामाजिक भ्रष्टता को लक्ष्य किया है।

'रेखाएँ : वृत्तचक्र' का कथानक समाज के मध्यवर्ग से लिया है।

'आगिनखोर' समाज में बढ़ती हुई आधुनिकता पर व्यंग्य करनेवाली कहानी है।

इसके साथ 'एक कहानी का सुपात्र', 'तीन बिंदियाँ', 'तीर्थोदक', 'अपनी कहानी', 'नित्य लीला' आदि उनकी कहानियाँ हैं।

इस तरह रेणु की कहानियों के कथानक मध्य या निम्न वर्गीय समाज से लिए गए हैं जिनमें कल्पना के स्थान पर यथार्थ का प्रभाव दिखायी देता है। लोकसंस्कृति मूलक समाज के विघटन की बेचैनी रेणु की कहानियों का प्रमुख स्वर है।

आँचलिक जनजीवन के सांस्कृतिक पक्ष को रेणु ने विभिन्न कोणों से अपनी कहानियों में चित्रित किया है। रेणु ने जहाँ एक ओर अपनी कहानियों में ग्राम्य जीवन को मुखरित किया है वहीं दूसरी ओर नागरीय

यांत्रिकता में जीवन यापन करनेवाले पात्रों की मानसिकता का सूक्ष्म उद्‌घाटन किया है। जीवन की सहज लय को मोहक सूरों में बांधने का कलात्मक प्रयास करनेवाली ये कहानियाँ गीतिधर्मा हैं। रेणु ने सामाजिकता को व्यापक रूप में अपनी रचना में ग्रहण किया है। इसी कारण उनकी कहानियों में नैराश्य, हीनभावनाओं और अवसादजन्य कुंठाओं का अधिपत्य नहीं हुआ है। इसी कारण रेणु की कहानियों को किसी विशेषण में बांधकर वर्गीकृत नहीं किया जा सकता।

2.2.2 रेणु के उपन्यास :-

रेणु की औपन्यासिक कृतियों की संख्या बहुत ही कम है। संख्या की सीमितता के बाद भी प्रभाव की दृष्टि से रेणु की हिंदी उपन्यास साहित्य में अपनी अलग पहचान है। 1954 में प्रकाशित 'मैला आँचल' फणीश्वरनाथ रेणु की प्रथम औपन्यासिक रचना है, जिसने अपनी अजस्त्र कीर्तिद्वारा रेणु को आँचलिक उपन्यासकार के रूप में प्रख्यात किया। 'मैला आँचल' इस उपन्यासद्वारा हिंदी साहित्य जगत में उपन्यास के प्रचलित परंपरागत ढाँचे को तोडकर आँचलिकता को प्रवृत्ति के रूप में प्रतिष्ठापित करने का श्रेय फणीश्वनाथ रेणु को प्राप्त हुआ है। उनके इस उपन्यास से ही आँचलिक उपन्यासों का विकास माना जाता है।

1954 में प्रकाशित 'मैला आँचल' इस उपन्यास में बिहार के पूर्णिया जिले के मेरीगंज गाँव को उपन्यास का कथाक्षेत्र बनाकर वहाँ के समाजजीवन का विविधांगी चित्रण किया है। मेरी गंज की आर्थिक विषमता, राजनीति की विकृत स्थिति, अंग्रेज राज्य के दु:शासन से ग्रस्त जनता, किसानों की समस्याएँ, अंधश्रद्धा तथा अत्याचार से शोषित जनता और इन सब विषमताओ के बीच समाजवादी दल के प्रचार के कारण गाँव के लोगों में पैदा हो रही थोडी सी चेतना इन सब का अत्यंत गतिमय चित्रण हुआ है।

1957 में प्रकाशित 'परती परिकथा' रेणु का दुसरा चर्चित उपन्यास है। जिसे हिंदी साहित्य जगत में ऐतिहासिक घटना कहा गया है। इस उपन्यास में पूर्णिया जिले के परानपुर ग्राम को कथाक्षेत्र बनाकर वहाँ के सामाजिक राजनीतिक तथा आर्थिक जीवन को चित्रित किया है। उपन्यास में परानपुर की सैकडों एकड़ विस्तृत घूसर, वीरान, वंध्या धरणी की पीडा को मानवीय संदर्भ में प्रस्तुत कर गाँव का जीवन और उसकी समस्त विकेंद्रियता का सम्यक चित्र लेखक ने प्रस्तुत किया है।

1963 में प्रकाशित 'दीर्घतपा' यह उपन्यास व्यक्तिकथा पर केंद्रित उपन्यास है। इसमें वर्किंग-विमेन्स होस्टल की जिंदगी और समाजसेवा के नाम पर स्वार्थसाधन करने तथा पापाचार फैलानेवाले होस्टल के

संचालकों की जीवनकथा को प्रस्तुत किया है। इसके साथ एक संघर्षशील नारी को देशसेवा के नाम पर किस तरह त्रस्त किया जाता है इसका मुख्य रूप से चित्रण किया है।

1965 में प्रकाशित 'जुलूस' नोबीनगर और गोडियार गाँव की आत्मा के दर्शन करानेवाला आँचलिक उपन्यास है। वर्णित अंचल को समग्रता के साथ चित्रित करनेवाले इस उपन्यास में कर्म को जीवन का मूलमंत्र माननेवाली एक महिमामयी नारी के सतत संघर्ष की कथा को चित्रित किया है।

1966 में प्रकाशित 'कितने चौराहे' रेणु का सबसे लघु उपन्यास है। इसमें राष्ट्रीय प्रेम और विद्यार्थी जीवन की निष्कलुष शुचिता को उपन्यास का विषय बनाते हुए भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम कालीन मानसिकता का गहरा बोध कराया है।

1979 में प्रकाशित 'पल्टू बाबू रोड' उपन्यास पूर्णिया जिले के परमान नदी के किनारे बसे 'बैरगाछी' कस्बे के लोगों की कथा है।

इर तरह रेणु लिखित छः उपन्यासों में से 'मैला आँचल' तथा 'परती परिकथा' ये दो बृहद आँचलिक उपन्यास हैं जिन्हें महाकाव्यात्मक उपन्यास कहा जाता है। 'मैला आँचल' उपन्यास नें हिंदी साहित्य में आँचलिकता को प्रवृत्ति के रूप में प्रतिष्ठापित किया।

'परती परिकथा'आँचलिकता की दृष्टि से 'मैला आँचल' से आगे का चरण है। इसे आँचलिकता का महागद्य कहा जा सकता है। 'दीर्घतपा', 'जुलूस', 'कितने चौराहे', 'पल्टू बाबू रोड' ये रेणु लिखित लघु उपन्यास है।

रेणु का अँनांचलिक उपन्यास 'दीर्घतपा' एक चरित्रप्रधान उपन्यास है।

रेणु लिखित 'जुलूस', 'कितने चौराहे', 'पल्टू बाबू रोड' आँचलिकता का दर्शन करानेवाले उपन्यास हैं।

इस प्रकार रेणुने अपने उपन्यासोंद्वारा वस्तुसंगठन तथा जीवन संग्रह की नई दिशा हिंदी उपन्यास साहित्य को प्रदान की।

2.2.3 रेणु की अभिव्यक्ति के विविध रूप :-

रेणु ने अपने विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए साहित्य के अनेक रूपों का प्रयोग किया। कविता, कहानी, उपन्यास के साथ रिपोर्ताज, संस्मरण आदि माध्यमों का प्रयोग किया।

2.2.3.1 रेणु के रिपोर्ताज :-

1977 में प्रकाशित 'नेपाल क्रांति की कथा' रेणु का महत्त्वपूर्ण रिपोर्ताज है। इसमें सात रिपोर्ताज हैं। इसमें लेखक ने नेपाली क्रांतिकाल की घटनाओं को और उसकी अनुभूतियों को खंडरूप में न रखकर क्रमबद्ध रूप से एक कथा के रूप में बांध दिया है। रेणु स्वयं नेपाल क्रांति के योद्धा रहे थे, इस कारण इन रिपोर्ताजों का जन्म एक ठोस आधार पर हुआ है। इसकी विशेषता यह है कि क्रांति और संघर्ष की कथा होने के बाद भी उसमें रोचकता, सरसता एवं सरल प्रवाह बना रहता है।

1977 में प्रकाशित 'ऋणजल-धनजल' नामक ग्रंथ में रेणु के कुछ रिपोर्ताज संग्रहित है। दो भागों में विभाजित इस रिपोर्ताज में पटना में आयी बाढ़ एवं बिहार में पडे सूखे से ग्रस्त लोगों की स्थिति एवं मानसिकता का बोध कराया है। इस संकलन में बाढ से संबंधित पाँच और सूखे से संबंधित छ: रिपोर्ताज संग्रहित हैं। बाढ़ से संबंधित रिपोर्ताज के नाम हैं - 'कुत्ते की आवाज', 'जो बोले सो निहाल', 'पंछी की लाश', 'कलाकारों की रिलीफ पार्टी', 'मानुष बने रहो' और सूखे से संबंधित रिपोर्ताज हैं - 'भूमिदर्शन की भूमिका 1 से 6 तक।

उनके ये रिपोर्ताज केवल घटनाओं के या दृश्यों के कथात्मक विधान नहीं बल्कि मानवीय स्पंदनों के दस्तावेज हैं।

इस प्रकार सहज मानवीय संवेदनाओं युक्त रोचक रिपोर्ताजों की रेणु ने रचना की है।

2.2.3.2 रेणु के संस्मरण :-

रेणु ने रिपोर्ताजों के साथ संस्मरण भी लिखे हैं। 'ईश्वर रे मेरे बेचारे', 'नेपाल मेरी सानो आमा' तथा 'एक स्मृति : एक पत्र' आदि अन्य संस्मरण रेणु द्वारा लिखे गये।

'नेपाल मेरी सानो आमा' में लेखक ने अपने नेपाल यात्रा की भूमिका और वहाँ कोइराला

परिवार में प्राप्त प्रेम आदि का उल्लेख किया है।

'ईश्वर रे मेरे बेचारे' में उनके ग्राम के आराध्य वटवृक्ष का रेणु के जीवन पर हुआ प्रभाव चित्रित किया है।

'एक स्मृति : एक पत्र' में रेणु ने अपने मृत श्वानकी स्मृतियों को संजोया है।

इस प्रकार रेणु लिखित ये संस्करण ताजगीपूर्ण हैं। इसमें लेखक ने आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग किया है। साथ में विवरणों की प्रधानता भी इसमें विद्यमान है।

2.2.3.3 रेणु के रेखाचित्र :-

रेणु संस्मरण तथा रिपोर्ताज लेखक के साथ रेखाचित्रकार भी थे। यद्यपि उनके स्वतंत्ररूप से कोई रेखाचित्र प्राप्त नहीं हैं फिर भी रेखाचित्र के रूप में उनकी 'विषयांतर' यह उल्लेखनीय रचना है।

इसमें नान्हूँ चौकीदार का चित्र खींचने का प्रयास लेखक ने किया है पर रचना के अंत तक उसका संपूर्ण रेखाचित्र खिंचने में लेखक सफल नहीं हुआ है।

इस तरह से रेणु ने कविता, कहानी, उपन्यास, संस्मरण, रिपोर्ताज, रेखाचित्र आदि अनेक माध्यमों से अपने को अभिव्यक्त किया है।

रेणु का जीवन अंचल से जुडा रहा इसी कारण उनका बहुतसा लेखन अंचल से संबंधित रहा है।

ग्राम्य जीवन को बहुत नजदीक से अनुभूत करने के कारण उनके साहित्य में अंचल का यथार्थ चित्रण तथा अंचल की समस्याओं को स्थान मिला है।

रेणु भारतीय तथा नेपाली स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय रहे थे। उन्होंने जनता की समस्याओं को जाना था तथा अन्याय के प्रति सरकार से आंदोलन भी किये थे। इसी कारण उनके उपन्यासों में देश की राजनीनिक समस्याओं तथा स्वतंत्रता आंदोलन की घटनाओं का वर्णन हुआ हैं।

श्रेष्ठ कविता लेखन के बाद भी कविताओं का तिथि के साथ संकलन न होने से उनका सही

मूल्यांकन नहीं हो सकता।

रेणु ने अपनी कहानियों में मध्य या निम्न वर्ग का यथार्थ चित्रण किया है।

दो बृहद और चार लघु उपन्यासों के सीमित लेखन के बाद भी प्रभाव की दृष्टि से हिंदी औपन्यासिक जगत में उनका विशेष स्थान रहा है।

नेपाल के कोइराला परिवार का उनके जीवन पर हुआ प्रभाव तथा उस परिवार के प्रभाव और प्रेरणा से नेपाली स्वतंत्रता आंदोलन में उनका सक्रिय सहभाग आदि घटनाओ को उनके संस्मरणों में स्थान मिला है।

उनके रिपोर्ताज अभावग्रस्त लोगों की मानसिकता को व्यक्त करनेवाले अत्यंत संवेदनापूर्ण तथा रोचक है।

एक परिपूर्ण रेखाचित्र खींचने में रेणु भले ही सफल नहीं हुए हों पर उन्होंने अपनी रचना में रेखाचित्र खीचने का प्रयास किया है।

इस प्रकार अनेक साहित्यिक विधाओं से उन्होंने अपने को अभिव्यक्त किया है। अनेक जगहों पर उनके व्यक्तित्व ने उनके कृतित्व में स्थान पाया है।

2.3 गो. नी. दांडेकर का व्यक्तित्व :-

मराठी साहित्य में गो. नी. दां. का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है।मराठी साहित्य में वे गो. नी. दां. इस नाम से पहचाने जाते हैं। उन्होंने विपुल साहित्य लेखन किया है। विशेषत: उनके आँचलिक उपन्यास बहुचर्चित रहे हैं।

गो. नी. दां. अत्यंत मृदू तथा संवेदनशील प्रकृति के व्यक्ति थे। उन्हें हर सुंदर चीज से प्यार था। उन्होंने अपने जीवन में प्रकृति की हर चीज से प्यार किया। लोगों से प्यार किया। जीवन में अनेक बार मानव व्यवहार से दु:खी हुए, त्रस्त हुए फिर भी मानवता पर उनकी अटूट श्रद्धा हमेशा बनी रही। उन्होंने जीवन से प्यार किया और इसी जीवन की अनुभूति को अलग-अलग दृष्टिकोणों से अपने साहित्य में अभिव्यक्त किया।

मराठी साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखनेवाले गो. नी. दां. का जन्म 8 जुलै 1916 में नागपुर जिले के परतवाडा गाँव में हुआ। उन्होंने परतवाडा गाँव में ही पाँचवी इयत्ता तक अपनी शिक्षा पूरी की। इसके आगे उन्होंने शिक्षा नहीं ली। वे हमेशा स्वच्छंद प्रवृत्ति के रहे। उन्हें कोई किसी बंधन में नहीं बाँध सका। उनके मन ने जैसा चाहा वैसा ही आचरण उनके द्वारा हुआ है। इसीकारण स्वतंत्रता प्राप्ति के उद्देश्य से गांधीजी द्वारा प्रभावित हो उन्होंने 14 साल की उम्र में घर से पलायन किया। 1930 से 1945 तक के पंधरा सालों में वे भ्रमण करते रहे, वेदों, संतों का उन्होंने अध्ययन किया, समाज सेवा में कार्यरत रहे। इन सालों में जीवन को बहुत करीब से देखा, समझा और उसे अपने द्वारा अभिव्यक्त करना चाहा। इस अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने लेखन का माध्यम चुना। इसी कारण 1941 को अपने विवाह के समय उन्होंने अपना दृष्टिकोण व्यक्त करते हुए कहा, ''मी लेखनावर जगायच ठरवलय, पैसा मिळवण हे माझ उद्दिष्ट नाही.''[7] (मैंने लेख को उपजीविका का साधन निश्चित किया है, पैसा कमाना मेरा ध्येय नहीं है।)

गो. नी. दां. का यह दृष्टिकोण सुनने के बाद भी 'विमल नामजोशी' इस अत्यंत सुंदर, सहनशील तथा धैर्यवान स्त्री ने उनके साथ विवाह किया। गो. नी.दां की आर्थिक समस्याओं का धैर्य से सामना कर गो. नी. दां. के जीवन को संभाला तथा दांपत्य जीवन को सुखी बनाया। ऐसा करते वक्त अनेक बार उन्हें अपने मन को दबाना पड़ा, पर वे दु:खी नहीं हुई। हमेशा उन्होंने एक लेखक की पत्नी बने रहने का प्रयास किया। अपने स्वभाव में परिवर्तन कर गो. नी. दां. के जैसे खुद को बनाया। घरेलू समस्याओं से गो. नी. दां. को दूर रखा। घर की सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले उसे बेखूबी निभाती रही। वे हमेशा उनकी समर्थक रही। गो. नी. दां.के लेखन कार्य को उन्होंने हमेशा प्रोत्साहन तथा समय दिया। गो. नी. दां.के साहित्यिक दोस्तों को संभाला। गो. नी. दां.की भ्रमंती पर कभी गुस्सा नहीं हुई और न ही गो. नी. दां. की रूचियों को कोसा। उन्होंने गो. नी. दां.के स्वच्छंद जीवन को गो. नी. दां. के मायने से जीने दिया। उनके पीछे हमेशा छाया बनकर खडी रही।

वीणा देव गो. नी. दां. की एकमात्र संतान है। वे प्राध्यापिका हैं तथा उनका विवाह 1967 में पुणे के सर परशुरामभाऊ महाविद्यालय के अध्यापक विजय देव से हुआ। गो. नी. दां. की बेटी तथा जामात ने उन्हें बहुत प्यार दिया। हमेशा वे गो. नी. दां. के समर्थक रहे।

गो. नी. दां. ने अपनी जिंदगी में केवल एकमात्र नौकरी सातवलेकर के 'पुरूषार्थ' में सहसंपादक के पद पर की। शादी के बाद उनका वास्तव्य जब औंध गाँव में रहा था तब की यह नौकरी है। इसके कुछ दिनों बाद वे औंध से 'तलेगाँव' आ गये जहाँ उनका चालीस बरस तक वास्तव्य रहा। उन्होंने अपने साहित्य

13525

A

का निर्माण इस गाँव में रहकर किया। प्रकृति से सजे इस गाँव से बाहर जाना गो. नी. दां.ने कभी नहीं चाहा। जीवन के 73 सालों तक वे लेखन करते रहे। भ्रमण करते रहे। तथा एक स्वच्छंद जीवन का उन्होंने अनुसरण किया।

2.3.1 गो. नी. दां. का रहन सहन :-

उन्हें जीवन के साथ-साथ अपने आप से भी प्यार था। खुद के व्यक्तित्व को आकर्षक बनाने में उन्हें विशेष रूचि थी। कपडों के प्रति वे सतर्क रहते थे। सफेद धोती, रेशमी पीले रंग की कमीज, पाँव में जूते और पोषाख के अनुरूप एक थैला हमेशा उनके साथ रहता था। उन्होंने चेहरे को आकर्षक बनानेवाली विशिष्ट प्रकार की डाढी रखी थी जो उन्हें बहुत जचती थी।

2.3.2 गो. नी. दां. की रूचियाँ - (गो. नी. दां. के शौक) :-

उन्होंने अपने साहित्य लेखन के साथ अन्य शौक भी रखे थे।

उन्हें तस्वीरें खींचने का शौक था। उन्होंने अपने भ्रमणकाल में प्रकृति के, निकटवर्तियों के हजारों छायाचित्र खींचे थे। उन्हें छायाचित्रों में इतनी रूचि थी कि वे घंटों उन छायाचित्रों पर बातें करते या लोगों को दिखाते रहते थे।

अपने भ्रंमती काल में पर्वतों, पहाडों, तराईयों में से एकत्रित किए हुए अलग अलग रंगों, आकारों के कंकडों को तराशकर अलग अलग आकृतियाँ निर्माण करने का उन्हें शौक था। वे घंटों उन कंकडों की तरफ देखते रहते और फिर उनमें से किसी एक आकृति को खोज निकालते।

गो. नी. दां. को अनेक प्रकार के इत्र एकत्रित करने का शौक था। उनके पास अनेक प्रकार के इत्रों से भरी चंदन की मंजुषा थी। वे अपने कान में हमेशा इत्र का फाया रखते थे। उन्हें इत्र के अलावा कभी कोई परफ्युम पसंद नहीं आया।

उन्हें पुरातन चीजों को संग्रहित करने का शौक था। उन्होंने किलों के भ्रमंती काल में अनेक ऐतिहासिक चीजों को संग्रहित किया था। हर चीज का ऐतिहासिक मूल्य उनके लिए महत्त्वपूर्ण था। उन्होंने इतिहास को पूरे तनमन से प्यार किया।

गो. नी. दां.को संगीत में रूचि थी। हास्यव्यंग्यपूर्ण साहित्य उन्हें विशेष पसंद था।

इस प्रकार उनकी यह विशेष रूचियाँ उनमें स्थित एक कलाकार का दर्शन कराती हैं।

2.3.3 गो. नी. दां. की स्वभाव गत विशेषताएँ :-

गो. नी. दां. अत्यंत संवेदनशील थे। किसी भी आनंद या दुःख के प्रसंग में उनकी आँखे आसूओं से भर जाती थी। अपने ही साहित्य के पठन पर भावनात्मक प्रसंग में वे अपने आसूओं को रोक नहीं सकते थे। वह कृति जितनी बार पढ़ी जाय उस वक्त हर बार वे रोते थे। उनके आँसू अपने आसपास के परिवेश का ध्यान नहीं रख सकते थे। इस प्रकार वे अत्यंत मृदु तथा संवेदनशील स्वभाव के साहित्यिक थे।

उनका स्वभाव अत्यंत स्वच्छंद था। उन्हें कभी कोई किसी बंधन में बांध नहीं सका। उनका जीवन की तरफ देखने का अपना ही एक नजरिया था। वे कहते हैं, ''एक खर आहे, की एका ठरलेल्या वाटेनं मी गेलो नाही. ह्या सगळ्याचच मला आकर्षण होत. सगळ्यांतच रमावस वाटायच. स्वदेश प्रेम, वैराग्य, आध्यात्म, भटकेपण, निष्ठपूर्वक काम, मला वाटत माझ समाधान झाल, की मी त्या ठिकाणाहून निघत असे. सगळे धागे, सगळे पाश तोडून, पुन्हा न परतण्यासाठी.''[8]

(यह सच है कि किसी एक नियत राह पर मैं नहीं चला। इन सबका मुझे आकर्षण था। मुझे लगता कि इन सब में मैं रम जाऊ। स्वदेश प्रेम, वैराग्य, अध्यात्म,घुमक्कडी, निष्ठापूर्वक काम इन सबसे मेरा पूरी तरह से समाधान हो जाता तो मैं वहाँ से चल पड़ता। सब धागे, सब बंधन तोडके फिर न लौटने के लिए।)

इस प्रकार उन्होंने जीवन को अपने तरीके से जिया। अपने दृष्टिकोण से देखा। समझा और अपने साहित्य द्वारा उसे अभिव्यक्त किया।

2.3.4 गो. नी. दां. का शिवप्रेम :-

गो. नी. दां. ने महाराष्ट्र की मिट्टी से नितांत प्यार किया।छत्रपति शिवाजी महाराज पर उनकी श्रद्धा तथा भक्ति थी। शिवाजी महाराज के महान कार्य से प्रेरित होकर उन्होंने शिवाजी के जीवन पर आधारित साहित्य निर्मिती की।

शिवाजी महाराज उनके आराध्य दैवत थे। शिवाजी महाराज के कार्य से वे हमेशा प्रेरित रहे। शिवाजी महाराज के तृतीय जन्मशताब्दी के अवसर पर रायगड किले पर शिवाजी महाराज का अश्वारुढ पुतला

निर्माण की जिम्मेदारी गो. नी. दां. पर सौंपी गयी तब उसका सहर्ष स्वीकार करते हुए उन्होंने कहा, ''हे काम मी शिवप्रेम आणि रायगडच्या प्रेमापोटी करतो. त्यासाठी शासनांन मला एक पै ही दयायच कारण नाही.''[9]

(यह काम मैं शिवप्रेम और रायगड प्रेम के कारण ही कर रहा हूँ। इस कार्य के लिए मुझे सरकार की ओर से आर्थिक मदद देने की जरूरत नहीं है।)

इस प्रकार शासकीय मदद को अस्वीकार करते हुए उन्होंने रायगडपर खुद एक झोपडे में रहकर वह कार्यभार संभाला। यह कार्यभार संभालते हुए उन्होंने अपने आप को धन्य समझा था।

उन्हें शिवाजी महाराज के साथ महाराज से जुडी हर चीज से प्यार था। इसी कारण एक बार वे खूद खिंची हुई तस्वीरें जिनमें से एक जिजामाता का समाधी स्थान तथा दूसरी शिवाजी महाराज के पदचिन्हों की थी उसे डॉ. व.दि. कुलकर्णी के हाथों सूपूर्द करते हुए कहते हैं, ''सर हे माझं काळीज मी तुमच्या हवाली करतो आहे. तुमच्या हाती ते सुखरूप राहील.''[10]

(सर मेरा हृदय मैं आपके हवाले कर रहा हूँ। आपके पास वह सुरक्षित रहेगा)

शिवाजी महाराज से जुडे इन छायाचित्रों को डॉ. कुलकर्णी के हाथों सौंपते हुए वे संवेदनशील होते हुए रो पडे थे। यह घटना उनके शरीर के कण कण में बसे शिवप्रेम को व्यक्त करती है।

शिवाजी महाराज के साथ उनके किलों पर भी उन्होंने प्यार किया। उन्होंने महाराष्ट्र के दो सौ, ढाई सौ किलों के दर्शन किये। शिवाजी के हर किले पर वे बार बार जाते रहे तथा हर बार शिवाजी के कार्य से प्रेरित होते रहे। उनकी भ्रमंती का केंद्रस्थल रायगड किला ही था। रायगड पर आके वे आत्मिक शांति पाते। उनका सबसे प्रिय किला राजगड था क्योंकि खुद शिवाजी वहाँ अपने परिवार समवेत पचीस बरस रहे थे और यह बात उनके लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण थी। राजगड के प्रति उनमें स्थित आकर्षण, श्रद्धा तथा प्यार के कारण उन्होंने वहाँ एक झोंपडा बनाया था, जिसमें वे अनेक बार अपना वास्तव्य करते थे। उन्हें किलों की सूक्ष्म से सूक्ष्म जानकारी रहती थी। इस प्रकार उन्होंने शिवाजी के किलों पर अटूट प्यार किया। इस प्रकार इस मराठी माटी से एकरूप हुआ उनका मन कभी बाहर आकर्षित नहीं हो सका। इसीलिए अपनी अमरिका भेंट पर वक्तव्य करते हुए वे कहते हैं,

''इथ खूप भव्य प्रमाणात सगळे आहे, पण आपली रायगड राजगडची गंमत काही वेगळीच ! तसे इथे काही नाहीं, इतिहास सगळा दोनशे वर्षाचा. आपल्याला तो साडे पाच हजार वर्षापूर्वीचा आहे. आपले सिंहगड, पुरंदर हे कमीत

कमी अडीच हजार वर्षापूर्वी रचलेले.''[11]

(यहाँ सब कुछ विशाल है फिर भी अपने रायगड और राजगड किलों की बात ही कुछ और। उसके समान यहाँ कुछ भी नहीं। संपूर्ण इतिहास दौ सौ वर्षों का। अपना इतिहास तो पाच हजार वर्ष पुराना है। अपने सिंहगड, पुरंदर किले कमसे कम ढाई हजार वर्ष पहले निर्मित है।)

इस तरह से शिवाजी महाराज तथा उनके किले गो. नी. दां. के प्रेरणास्थल थे।

गो. नी. दांडेकर ने अपने सारे जीवन को शिवाजी के प्रति समर्पित किया तथा मृत्यु के उपरांत भी वे शिवाजी के प्रति समर्पित होना चाहते थे इसकारण उन्होंने बाबासाहब पुरंदरे जी को अपनी इच्छा व्यक्त करते हुए कहा था,

''माझ्या मरणानंतर माझ्या अस्थी या पावनखिंडीत, रायगडावर, टकमक टोकाखाली आणि सिंहगडावर तानाजीच्या कड्याखाली टाका !''[12]

(मेरी मृत्यु की पश्चात मेरी अस्थियाँ पावनखिंड में, रायगड पर, टकमकटोक के नीचे और सिंहगड पर तनाजी के कगार के नीचे बिखेर देना।)

यह घटना उनका शिवप्रेम तधा उनमें स्थित शिवाजी के प्रति श्रद्धा को व्यक्त करती है।

किलों के साथ साथ उन्होंने किलों पर वास्तव्य करनेवाले लोगों पर भी बहुत प्यार किया। उन लोगों को अपने उपन्यासों में चित्रित कर उनको वाचकों के मन में भी एक स्थान प्राप्त करा दिया। किलों पर आधारित साहित्य निर्मिती की। इसप्रकार उनमें बसा शिवप्रेम उनकी हर क्रिया से अभिव्यक्त हुआ।

2.3.5 गो. नी. दांडेकर का प्रकृति प्रेम :-

गो. नी. दां. को प्रकृति से बहुत प्यार था। उन्हें भ्रमण करने में विशेष रूचि थी। इस रूचि के कारण उन्होंने प्रकृति की हर चीज से प्यार किया। उन्हें फूलों से प्यार था। उन्होंने लोणावला-खंडाला के पहाडों, तराइयों पर खिले फूलों की तस्वीरे खींची हैं। इतने सारे फूलों में से हर एक फूल पर वे प्यार करते, उन्हें अपने मन से एक एक नाम दे देते थे। जब उन्हें डॉ. व.दि. कुलकर्णी ने पूछा की आपको इन फूलों के नाम कैसे मालूम पडे ? तो उसपर वे अपने मस्तिष्क तथा दिल को हाथ लगाकर बोले,

''इथून ही आली आहेत.''[13] (यहाँ से वो आयें हैं।)

इसके बाद वे हर एक फूल का नाम तथा उसके नामकरण के पीछे की उनकी कल्पना शक्ति, उसका उचित अर्थ आदि विस्तारपूर्व बताते। वे फूलों पर घंटों बातें करते रहते थे। इस तरह से उन्होंने फूलों से बेहद प्यार किया।

उन्हें प्रकृति के हर वृक्ष, पत्ते, फूल, प्राणी हर ऋतू, ऋतुओं का वैशिष्ठ हर एक की विस्तृत और सूक्ष्म जानकारी थी। तस्वीर खींचने के शौक के कारण अपने भारत भ्रमण के काल में उन्होंने अनेक दुर्ग, पहाड, नदियों, तीर्थस्थलों, मंदिरों, मूर्तियों, बनों की तस्वीरें खींची हैं। प्रकृति के साथ साथ प्रकृति की उन तस्वीरों से भी उन्हें प्यार था। घंटों तक वे उन तस्वीरों की बातें करतें।

इसप्रकार उन्होंने प्रकृति से बहुत कुछ ग्रहण किया तथा उसे अपने साहित्य में अभिव्यक्त किया। वे कहते हैं, ''मला जे साक्षाकृत होते ते इथल ह्या भूमीतल आहे. लिहितो ते ह्या मातीच, ह्या काळ्या आईच्या कुशीत रूजलेले, वाढलेल.''[14] (मुझे जो अनुभूत होता है वह इस भूमि का है। जो लिखता हूँ वह इस मिट्टी का है, इस काली मिट्टी की गोद में अंकुरित फलित हुआ।)

यह उनकी स्पष्ट भूमिका थी। यही भूमिका उनके साहित्य में पूर्णत: अभिव्यक्त होती है।

2.3.6 गो. नी. दां. का भ्रमण जीवन :-

गो. नी. दां. को भ्रमण से रूचि रही है। 1930 में गांधीजी से प्रभावित हो स्वातंत्र्यप्राप्ति की उद्देदश्य से 14 साल की उम्र में उन्होंने घर से पलायन किया। 1933 में उनकी भेंट गाडगे महाराज से हुई। उनके साथ उनके शिष्य बनकर गो. नी. दां.ने सारे महाराष्ट्र का भ्रमण किया। इस काल में सामान्य लोगों के साथ घुलेमिले, अनेक साधू संतों से मिले, उनसे वादविवाद किया। समाज जागृति की। वारकरी शिक्षणसंस्था का कार्य किया। ज्ञानेश्वर, तुकाराम, गीता भाष्य का अध्ययन किया। गाडगे महाराज के साथ रहते रहते उनके व्यक्तित्व का, कृति का सूक्ष्म निरीक्षण कर उनका चरित्र लेखन किया।

शिवप्रेमी गो. नी. दां.के लिए शिवनिर्मित किले तीर्थस्थल थे। उन्होंने महाराष्ट्र के अनेक किलों का बार बार भ्रमण किया है। इस भ्रमण काल में इन किलों की सूक्ष्म से सूक्ष्म जानकारी उन्होंने प्राप्त की और किलों पर आधारित साहित्य निर्मिती की। जिसे पढकर अनेक लोग किलों की तरफ आकर्षित हुए।

महाराष्ट्र भ्रमण के साथ साथ उन्होंने भारत भ्रमण भी किया। इस काल में उन्होंने प्रकृति के बेजोड चित्र देखें, अनेक स्थलों को देखा, उनसे प्रभावित हुए तथा उन्हें अपने साहित्य में चित्रित किया। यह चित्रण इतना प्रभावी हुआ था कि लोगों को उन स्थलों के साक्षात तथा यथार्थ दर्शन हो गये। प्रसिद्ध मराठी साहित्यिक पु. ल. देशपांडे एक पत्र में गो. नी. दां. से कहते हैं, ''आप्पा माझ्यासारख्या बैठ्या माणसाला फिरत्याचा आनंद तुम्ही घर बसल्या दिलात ---''[15]

(आप्पा मेरे जैसे घर बैठे आदमी को आपने घुमने का आनंद दिया।

यहाँ उनके लेखन कौशल्य की महत्ता प्रकट हई है जो उन्हें उनके भ्रमण जीवन से प्राप्त हुई है।

गो. नी. दां. ने 1940 में नर्मदा की परिक्रमा की। पूरी नर्मदा नदी की उन्होंने पैदल परिक्रमा की। यह परिश्रम साध्य कार्य आठ महिनों के कालावधी में पूर्ण किया। इस आठ महिनों के भ्रमण काल में उन्होंने अनेक घटनाओं को जाना, जीवन को समझा, अनेक साधूसंतों, उनके विचारों को जाना और इसके बाद इन अनुभवों को 'कुणा एकाची भ्रमणगाथा' उपन्यास में अभिव्यक्त किया।

इस प्रकार गो. नी दां. ने कभी अकेले तो कभी सहचारियों के साथ बहुत भ्रमण किया। साथ साथ वे भ्रमण करनेवालों को भी हमेशा प्रोत्साहित करते रहें।

गो. नी. दां. को भ्रमण करने से कोई कभी रोक नहीं सका। वे स्वच्छंद प्रवृत्ति से उनके बीमार होने तक भ्रमण करते रहे।

2.3.7 गो. नी. दां. की बीमारी तथा उनका देहांत :-

गो. नी. दां. ने 73 वर्षों तक लेखक किया। पर अंतिम दिनों में वे लकवे से ग्रस्त हो गये। जीवनभर अत्यंत धैर्य, उत्साह तथा स्वच्छंद जीवन जीनेवाला व्यक्ति अपने अंतिम दिनों में बहुत निराश हो गया। सदा से स्वावलंबी रहे गो. नी. दां. बीमारी से आये परावलंबी जीवन से दु:खी हो गये। अपनी इस अवस्था पर अपनी बेटी को लिखे पत्र में वे कहते हैं,

''राजी आज इतकी वर्ष लिहतो आहे. पण आता मी जितका हताश झालो आहे, तितका हताश मी कधीच झालो नव्हतो. या आजाराने माझे बोलणे नेले. माझे हिंडणे नेले-माझे लेखन नेले. एखाद्या बिबट्याला पिंजऱ्यात कोंडावे

तसे माझे झाले आहे. आता मी जगून काय करू? असा दुसऱ्यांना केवळ भारभूत होऊन जगण्यापेक्षा नसला तो बरा, पण ज्ञानदेवांनी म्हटले आहे, 'पावेल ते निवांता साहौनी जावे ।।'' म्हणून जे काय भोक्तव्य आहे, ते भोगायचे। ही परीक्षा देतो आहे या वयांत !''[16]

(राजी इतने बरस मैं लेखन कर रहा हूँ। लेकिन आज मैं जितना हताश हुआ हूँ उतना कभी न हुआ था। इस बीमारी ने मेरी वाणी बंद कर दी। मेरी घुम्मकडी बंद कर दी। साथ में मेरा लेखन भी। किसी बाघ को पिंजडे में बंद करने के समान मेरी स्थिति हो गयी है। अब मैं जीवित रहके क्या करू ? दूसरों पर बोझ बनकर जीने से मर जाना बेहतर। परंतु श्री ज्ञानदेवजी ने कहा है, 'पावेल ते निवांता साहोनी जावे।।' इसीलिए जो कुछ भोग है उसे भोगना ही पडेगा।इस उम्र में यह परीक्षा दे रहा हूँ।)

इस प्रकार इस बीमार स्थिति में गो. नी. दां. को आठ सालों तक रहना पड़ा। इस काल में उनकी पत्नी, बेटी तथा जामात ने उनकी सेवा की तथा उनका धैर्य, हौसला बनाये रखा। अंत में 31 मई 1998 को उनका 82 साल की उम्र में देहांत हो गया। इसके साथ मराठी साहित्य ने एक प्रतिभाशाली लेखक को गवाँ दिया।

2.4. गो. नी. दां. का कृतित्व :-

मराठी के प्रसिद्ध साहित्यिक गो. नि. दांडेकर ने अपनी लेखनकला का प्रारंभ विद्यार्थियों के लिए उपदेशपूर्ण कहानियाँ लिखकर किया। 1948 से वे उपन्यास की सर्जना करने लगे। 1948 में लिखित 'तुडवलेलं घरकुल' उनका प्रथम उपन्यास है। नौखाली की पृष्ठभूमि पर आधारित इस उपन्यास में यथार्थ परिस्थिती का चित्रण एवं व्यक्तिचित्रण बडा हृदयस्पर्शी किया है।

इस उपन्यास के साथ ही उनकी साहित्ययात्रा शुरू होती है। उन्होंने साहित्य की विविध विधाओं का प्रयोग करते हुए उपन्यास, कहानी, नाटक, संगीतिका, चरित्र-आत्मचरित्र, धार्मिक तथा पौराणिक लेखन, कुमार वाङमय, एवं स्थलवर्णन आदि का लेखन किया हैं।

2.4.1 गो. नी. दां. के उपन्यास :-

मराठी साहित्य में दांडेकर उपन्यासकार के रूप में विशेष महत्त्व रखते हैं। उन्होंने अनेक ऐतिहासिक, सामाजिक तथा प्रादेशिक उपन्यासों का लेखन किया। गो. नी. दां लिखित उपन्यासों में उनके आँचलिक उपन्यास विशेष महत्त्व रखते हैं।

2.4.1.1 गो. नी. दां. के आँचलिक उपन्यास :-

दांडेकर लिखित नौ बहुचर्चित आँचलिक उपन्यासों के कारण आँचलिक उपन्यासकारों के श्रेणी में उन्हें स्थान प्राप्त हुआ है।

1955 में प्रकाशित 'पडघवली' उनका प्रथम आँचलिक उपन्यास है। इस उपन्यास में अंबू नामक प्रभावी व्यक्तिचित्रण तथा संवादों के माध्यम से पडघवली अंचल का आंतर्बाह्य चित्रण कर आँचलिक उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में अपना अलग स्थान निर्माण किया है।

1958 में प्रकाशित 'माचीवरला बुधा' पूर्णरूप से यशस्वी आँचलिक उपन्यास है। प्रकृति पर प्यार करते करते उसका ही एक अविभाज्य अंग बन चुके एक प्रकृतिप्रेमी व्यक्ति का अतिसूक्ष्म चित्रण इस उपन्यास का कथानक है। मराठी आँचलिक उपन्यास क्षेत्र में इस प्रयोगशील, अभिनव तथा साहित्यिक गुणों से पूर्ण उपन्यास ने अपना अलग अस्तित्व रखा है।

1965 में प्रकाशित 'जैत रे जैत' उपन्यास में महाराष्ट्र के ठाकर जमाती के आदिवासियों के अंतर्बाह्य चित्रण के साथ नाग्या और चिंधी इन दो व्यक्तियों की प्रेमकथा और उन दोनों का प्रकृति तथा उसके साथ किया हुआ संघर्ष इनका अत्यंत कलात्मकता से गुंफन किया है।

1978 में प्रकाशित 'रानभुली' उनका वैशिष्ठपूर्ण उपन्यास है। रायगड उपन्यास का कथाक्षेत्र है। इस कथा क्षेत्र को लेखक ने अत्यंत संवेदनक्षमता तथा प्रभावी रूप से चित्रित किया है। व्यक्ति और प्रकृति के एकात्मता का दर्शन करानेवाला यह अत्यंत वैशिष्ठपूर्ण उपन्यास है।

1978 में प्रकाशित 'वाघरू' में राजगड तथा उसके आसपास का प्रदेश उपन्यास का कथाक्षेत्र है जिसे लेखक ने अत्यंत संवेदनक्षमता से सजीव बनाया है। इस उपन्यास का वैशिष्ठ इस बात में है कि लेखक ने वाघरू इस वन्यजीव को स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान कर उसके साथ मानव का संवेदनशील रिश्ता बनाया है।

'मृण्मयी' 1970 में प्रकाशित उपन्यास है। ज्ञानेश्वर तथा तुकाराम इन संतों के संस्कारों से प्रेरित लेखक ने इस उपन्यास में आत्मसाधना को उपन्यास के द्वारा व्यक्त करने का विलक्षण प्रयोग किया है। इसमें कोंकण के दाभोल खाडी के कुसगाव अंचल की मनू का व्यक्तिचित्रण अत्यंत प्रभावी किया है। इस मनू के इर्दगिर्द उपन्यास का कथानक घूमता है।

1953 में प्रकाशित 'शितू' प्रथम ही कोकण की पृष्ठभूमि पर लिखा लेखक का एक आँचलिक उपन्यास है। शितु उपन्यास लेखक के संवेदनशील तथा स्वप्नमय मन का अविष्कार है।इसमें विसु तथा शितु इन दो पात्रों की प्रेमकहानी है।

1955 में प्रकाशित 'पवनकाठचा धोंडी' उपन्यास लेखक की आदर्शवादी प्रवृत्ति का अविष्कार है। इसमें परंपरा, श्रद्धा तथा रीति रिवाज के बंधनों में निष्ठा रखनेवाले तुंगीगड के हवलदार का व्यक्तिचित्रण किया है।

1958 में प्रकाशित 'पूर्णामायची लेकरं' उपन्यास में व्हराड प्रांत के बावनगाव अंचल के उपेक्षित लोकजीवन को चित्रित किया है।

1982 में प्रकाशित 'तांबडफुटी' उपन्यास में ग्राम के उच्चवर्गीय लोगों में निर्माण हो रही व्यापक मानवता और सहिष्णुता का यथार्थ चित्रण किया है।

गो. नी. दां. के ये बहुचर्चित आँचलिक उपन्यास हैं। इसमें लेखक ने जीवन का यथार्थ चित्रण किया है।

भ्रमण करना लेखक के जीवन का अविभाज्य अंग रहा है। इसकाल में उनका जिन लोगों तथा प्रदेशों के साथ संवेदनशील नाता निर्माण हुआ उसे उन्होंने अपने इन उपन्यासों में कलात्मक रूप से अभिव्यक्त किया है।

इनके इन उपन्यासों के विषय, कथाक्षेत्र तथा व्यक्तित्व प्रभावी और अलग अलग रूप में चित्रित हुए हैं।

उन्होंने अपने उपन्यासों में प्रकृतिचित्रण अत्यंत सूक्ष्म तथा प्रभावी रूप में किया है। उनका प्रकृति प्रेम उनके उपन्यासों में अभिव्यक्त हुआ है।

2.4.1.2 ऐतिहासिक उपन्यास :-

दांडेकर ने अपने उपन्यास लेखन में आठ ऐतिहासिक उपन्यासों का निर्माण किया।

'पद्मा' इस उपन्यास में मधुर कोमलकांत पदावली के जनक जयदेव की बडी आकर्षक कथा चित्रित की है।

1951 में प्रकाशित 'रूमाली रहस्य' ऐतिहासिक रहस्यकथा है। 1953 में प्रकाशित 'जगन्नाथ पंडित' में कवि जगन्नाथ पंडित की कथा है।

गो. नी. दां. लिखित महाराष्ट्र का सजीव चित्रण करनेवाले पाँच उपन्यास महत्त्वपूर्ण हैं जो शिवकाल का विस्तृत चित्रण करते हैं।

1966 में प्रकाशित 'बया दार उघड' ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें शिवजन्म के पूर्व का महाराष्ट्र, मुस्लीमोंद्वारा जनता पर होनेवाले अन्याय तथा शहाजी राजा के पराक्रम का चित्रण किया है।

1968 में प्रकाशित 'हर हर महादेव' में मुसलमानों के अत्याचार से उध्वस्त महाराष्ट्र में बाल शिवाजी के आगमन से किस प्रकार स्जीवता आ गयी और वह रामदासजी के प्रवचनों से वृद्धिंगत हुई इसका चित्रण किया है।

1969 में प्रकाशित 'दर्याभवानी' में परकीय शक्ति और मराठों के बीच का संघर्ष तथा मराठों की कीर्तिगाथा का चित्रण किया है।

1972 में प्रकाशित 'झुंझारमाची' में सिंधुदुर्ग किले का निर्माण, इसके पीछे मराठों की जिद तथा उसमें से उनकी निर्माण की हुई नवसृष्टि का वर्णन किया है।

1974 में प्रकाशित 'हे तो श्रींची इच्छा' में शिवछत्रपती के राज्यभिषेक द्वारा महाराष्ट्र में निर्मित चैतन्य का वर्णन किया है।

इन ऐतिहासिक उपन्यासों के द्वारा उनका इतिहास प्रेम स्पष्ट होता है। दांडेकर हमेशा भ्रमण करते रहे हैं। इस भ्रमणकाल में उन्होंने अनेक प्रदेशों, किलों को देखा, जाना उन पर दिल से प्यार किया। छत्रपति शिवाजी पर प्यार और शिवाजी निर्मित किलों का गर्व उन्हें हमेशा रहा है। इसी प्रेरणा के कारण उनसे ऐतिहासिक उपन्यासों का निर्माण हुआ।

उन्होंने अपने इन उपन्यासों द्वारा शाही व्यक्ति, उनकी परंपरा तथा उनसे निर्मित किलों की विस्तृत जानकारी दी है। पर इतने विस्तृत ऐतिहासिक कथनों के बाद भी उपन्यास की रोचकता बनी रहती है। यही उनके उपन्यास कौशल्य की अपनी विशेषता है।

2.4.1.3 सामाजिक उपन्यास :-

1959 में प्रकाशित 'आम्ही भगीरथाचे पुत्र' इस उपन्यास में स्वातंत्र्यपूर्व पचास वर्षों के कालखंड की पृष्ठभूमि पर भाक्रा बांध का प्रकल्प तथा उस प्रकल्प को पूरा करने के ध्येय से प्रेरित एक एंजिनियर की जीवनकथा चित्रित की है।

1961 में प्रकाशित 'आनंदवनभुवन' इस उपन्यास में उन्होंने कुष्ठरोग की समस्या पर प्रकाश डाला है।

1947 में प्रकाशित 'बिंदूची कथा' में नौखाली वातावरण को चित्रित किया है।

1949 में प्रकाशित 'सिंधुकन्या' में सिंध प्रांत के निर्वासित लोगों के जीवन को चित्रित किया है।

2.4.1.4 पौराणिक उपन्यास :-

1962 में प्रकाशित 'उडोनि हंस चालला' और 1963 में प्रकाशित 'अजून नाही जागे गोकुळ' ये दो पौराणिक विषयोंपर आधारित उपन्यास हैं।

2.4.1.5 संतों पर लिखे उपन्यास :-

दांडेकर ने महाराष्ट्र के संतों की जीवनी पर आधारित उपन्यास लिखे। उनके आध्यात्मिक विचार और चिंतन का प्रभाव इन उपन्यासों में हुआ है।

1975 में प्रकाशित 'मोगरा फुलला' श्री. ज्ञानेश्वरजी के जीवन पर आधारित उपन्यास है।

1978 में प्रकाशित 'दास डोंगरी राहतो' उपन्यास स्वामी रामदास जी के जीवन पर आधारित

उपन्यास है।

1981 में प्रकाशित 'तुका आकाशा एवढा' उपन्यास में तुकारामजी के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं, उनके जीवन के परिवर्तनों के साथ उनकी महत्ता को चित्रित किया है।

2.4.1.6 आत्मचरित्रात्मक उपन्यास :-

दांडेकर हमेशा भ्रमण करते रहे हैं। अनेक स्थलों का दर्शन करना, भ्रमण करना उनकी विशेष रूचि रही है। अपने जीवन के भ्रमण काल की घटनाओं को उन्होंने 1957 में प्रकाशित 'कुणा एकाची भ्रमणगाथा' इस आत्मचरित्रात्मक उपन्यास में चित्रित किया है।

इस प्रकार गो. नी. दां. ने सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, आँचलिक उपन्यासों की निर्मिती की है।

2.4.2 गो. नी. दां. की कहानियाँ :-

इनके साहित्यलेखन में कहानियों की मात्रा बहुत कम है।

1958 में प्रकाशित 'आकाशाला आलं फूल' तथा 1964 में प्रकाशित 'सरू सासरी जाते' उनकी दो ही कहानियाँ हैं।

2.4.3 गो. नी. दां. के नाटक :-

गो. नी. दां. ने आठ नाटकों का लेखन किया।'सं. राधामाई', 'देवाघरची माणंस', 'कुऱ्हाडीचा दांडा', 'शितू', 'घवनाकाठचा धोंडी', 'वनराज सावध होताना', 'काका माणसांत येतो', 'जगन्नाथाचा रथ' आदि उनके नाटकों के नाम हैं।

2.4.4 संगीतिका :-

गो. नी. दां. ने पाँच संगीतिकों का लेखन किया।

2.4.5 चरित्र - आत्मचरित्र :-

1945 में प्रकाशित 'आमचे राष्ट्रगुरू' गो. नी. दा लिखित चरित्र है।

1973 में प्रकाशित 'स्मरणगाथा' उनका आत्मचरित्र है।

1976 में प्रकाशित 'श्री. गाडगे महाराज' इस चरित्र में उन्होंने श्री. गाडगे महाराज का जीवनदर्शन कराया है। उनका गाडगे महाराज जी के संग रहा साथ, तथा उनकी प्रखर स्मरणशक्ति तथा उनकी प्रतिभा के कारण यह चरित्र अत्यंत उच्च सीमा पर पहुँचा है।

2.4.6 धार्मिक तथा पौराणिक लेखन : -

गो. नी. दां. धार्मिक प्रवृत्ति के रहे हैं। उनके धार्मिक विचारों तथा चिंतन के परिणामस्वरूप उन्होंने अनेक धार्मिक और पौराणिक ग्रंथों का लेखन किया।

उनके निम्न लिखित ग्रंथ इस श्रेणी में आते हैं।

'संपूर्ण श्री महाभारत' 1955, 'श्री रामायण'1958

'श्री कृष्णायन' 1959, 'श्री कर्णायन' 1962

'भावार्थ ज्ञानेश्वरी' 1962, 'भक्ति मार्गदीप' 1967

'कहानी संग्रह' 1967, 'श्री गणेशायन' 1969

'सुबोध श्री गुरूचरित्र' 1970, 'श्री गुरू चरित्र'

'मंगल संसार' 1949

2.4.7 यात्रा और यात्रा वर्णन :-

भ्रमण करना गो. नी. दां. की विशेष रूचि रही है। इस रूचि के कारणवश उन्होंने देश के अनेक स्थलों की भ्रमंती की। किलों के प्रति उनका विशेष लगाव रहा है इस कारण उन्होंने महाराष्ट्र के

शिवकालीन कीलों के बारबार दर्शन किए और उन किलों से प्रभावित अपने मन को ग्रंथोंद्वारा अभिव्यक्त किया। निम्नलिखित ग्रंथों में उन्होंने अपनी यात्राओं को वर्णित किया है। साथ में यात्रास्थलों को भी वर्णित किया है।

'गगनात घुमविली जयगाथा' 1966

'महाराष्ट्र दर्शन' 1969

'दुर्गदर्शन' , 'किल्ले', 'दुर्गभ्रमण गाथा'

उनके यात्रावर्णन तथा स्थलवर्णन पर आधारित ग्रंथ है।

1979 में प्रकाशित 'छंद माझे वेगळे' यह उनका ललित लेखों का संग्रह है।

2.4.8 कुमार साहित्य :-

गो. नी. दां. ने कुमार साहित्य का भी विपुल मात्रा में लेखन किया है। उनके विपुल साहित्य लेखन में उपन्यासों के बाद का स्थान कुमार साहित्य को प्राप्त हुआ है। उनका कुमार साहित्य निम्नानुसार है।

'आपट्यांचा सदू' भाग 1 और 2 - 1947

'दिग्विजय' बाल कहानियाँ -1948

'आईची देणगी', भाग 1 से 4 कथा -1945 से 1948

'गोपाळांचा मेळा' उपन्यास - 1947

'शुभंकरोती' - 1949

'नर्मदेच्या तटाकी' स्थलवर्णन - 1949

'रक्षाबंधन' ऐतिहासिक कहानी - 1950

'मगधदेशाचा राजा' -

'श्री शिवाजी महाराज' कहानी

'व्रतसाधना' नाटक - 1952

'संत एकनाथ' - 1953

'संत तुलसीदास' - 1953

'प्राचीन पुरूषोत्तम' चरित्र - 1952

'भिल्लवीर कालिंग'

'शिवबाचे शिलेदार'

'श्री संत ज्ञानेश्वर' - 1974

'श्री संत एकनाथ' - 1980

'श्री संत नामदेव' 1974

'श्री संत तुकाराम' - 1974

'श्री संत रामदास' - 1974

'गड पहावे चढून' 1974

इस तरह से गो. नी. दां. ने विपुल मात्रा में साहित्य निर्मिती की।

गो. नी. दा कोकण क्षेत्र से संबंधित रहे हैं। उनके जीवन का बहुतसा समय अंचल से जुडा रहा इस कारण अंचल जीवन की अभिव्यक्ति उनके साहित्य, विशेषत: उपन्यासों में हुई है। उनके आँचलिक उपन्यासों में इसीकारण अंचल जीवन का सूक्ष्म चित्रण हुआ है।

गो. नी. दां. को भ्रमण करने में विशेष रूचि रही थी। इस भ्रमण काल में उन्होंने अनेक स्थलों

को देखा, जाना, उनकी विस्तृत जानकारी प्राप्त की, अनेक महान लोगों का संग रहा, उन महान व्यक्तियों के व्यक्तित्व को नजदिक से अनुभव किया। इसी के परिणामस्वरूप उन्होंने यात्रावर्णन, स्थलवर्णन पर आधारित ग्रंथ, चरित्र, महाराष्ट्र के किलों से प्रभावित हो उन पर आधारित ग्रंथों का निर्माण किया।

गो. नी. दां. के विचार आध्यात्मिक थे। इसकारण अपने इन विचारों को धार्मिक तथा संतों विषयक ग्रंथों में व्यक्त किया है। उन्होंने बहुत से धार्मिक, पौराणिक, संतविषयक ग्रंथों की निर्मिती की।

इस प्रकार गो. नी. दां. के जीवन तथा अनेक विचारों का प्रभाव उनके साहित्य पर हुआ है। एक तरह से उनका व्यक्तित्व ही उनके कृतित्व में व्यक्त हुआ है।

निष्कर्ष :-

पाँचवे दशक से अपना लेखनकार्य शुरू कर हिंदी उपन्यास साहित्य में आँचलिकता की सही मायने में नई दिशा प्रदर्शित करनेवाले प्रथम लेखक फणीश्वरनाथ रेणु हैं, जिन्होंने अपने लेखन कार्य के लिए साहित्य की अनेक विधाओं का उपयोग किया है।

उनके जीवन के बहुत से दिन अंचल से जुडे रहने के कारण उन्होंने अपने साहित्य में आँचलिक जीवन का अत्यंत संवेदनशील तथा यथार्थ चित्रण किया है।

रेणु भारतीय स्वतंत्रता संग्राम तथा नेपाली स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रहे थे। इन दिनों में उन्होंने सामान्यजनों पर होनेवाले अन्याय को निकट से देखा था। यही कारण है कि उनके बहुत से साहित्य में स्वतंत्रता संग्राम की घटनाओं का तथा देशप्रेम को व्यक्त करनेवाली घटनाओं का चित्रण हुआ है। इसके साथ सामान्यजनों पर होनेवाले अन्याय विरुद्ध उन्होंने अपनी कलम उठायी है। इस प्रकार उनके साहित्य से उनका देशप्रेम व्यक्त हुआ है।

रेणु का जीवन हमेशा से ही स्वच्छंद रहा। उन्हें कोई किसी बंधन में बांध कर नहीं रख सका। उन्होंने अपने जीवन को अपने तरिके से जिया। जीवन के हर पहलू को अनुभूत किया और अंत में उसे अपने साहित्य में अभिव्यक्त किया। इस प्रकार उनके साहित्य में उनकी अनुभूति ही अभिव्यक्त हुई है।

रेणु की तरह पाँचवे दशक से अपना लेखन कार्य शुरू करनेवाले गो. नी. दां. का मराठी

साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

गो. नी. दां. अंचल से हमेशा जुडे रहे इसी कारण उनके साहित्य में आँचलिक जीवन का सूक्ष्म तथा यथार्थ चित्रण हुआ है।

छत्रपति शिवाजी महाराज गो. नी. दां. के आराध्य दैवत थे। अपनी संपूर्ण जिंदगी में गो. नी. दां. शिवाजी महाराज के प्रति समर्पित रहे तथा शिवनिर्मित किले उनके लिए प्रेरणास्थल रहे। अपने श्रध्येय के महान कार्य से प्रभावित हो उन्होंने अनेक ऐतिहासिक उपन्यासों का निर्माण किया।

गो. नी. दां.को भ्रमण में विशेष रूचि थी। वे सारी जिंदगी भ्रमण करते रहे।

उनके प्रेरणास्थल रहे शिवाजी के दुर्गो का उन्होंने अनेक बार भ्रमण किया तथा उन किलों पर आधारित साहित्य निर्मिती कर सामान्यजनों के मन में किलों के प्रति जिज्ञासा तथा आकर्षण निर्माण किया। महाराष्ट्र के साथ उन्होंने सारे भारत का भ्रमण किया, प्राकृतिक चमत्कारों को देखा प्रभावित हुए, प्रकृति पर प्यार किया तथा उसे अपने साहित्य में सूक्ष्मता से चित्रित किया। अपने भ्रमण काल में उन्होंने जीवन के हर पहलू को जाना तथा उसे अपने साहित्य में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया।

गो. नी. दां. कभी किसी बंधन में बंधकर नहीं रह सके। हमेशा एक स्वच्छंद भ्रमण जीवन जीते रहे। इस भ्रमण काल में अनेक घटनाओं को अनुभूत किया तथा उसे अपने साहित्य में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया। इस प्रयास में वे बहुत हद तक सफल बन पाये हैं।

रेणु तथा गो. नी. दां. हमेशा स्वच्छंद जीवन जीते रहे। अपने स्वच्छंद जीवन में उन्होंने जिंदगी के हर पहलू को अनुभूत किया तथा उसे अपने साहित्य द्वारा अभिव्यक्त करने का प्रयास किया। अपनी अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं में लेखन किया। दोनों का जीवन अंचल से जुडा रहने के कारण उन्होंने आँचलिक साहित्य का अत्यंत संवेदनशीलता, सूक्ष्मता से तथा यथार्थ चित्रण किया है।

रेणु तथा गो. नी. दां. के साहित्यद्वारा उनका देशप्रेम व्यक्त हुआ है। रेणु अपने देशभक्ति के कारण भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में प्रत्यक्ष सहभागी हुए थे तथा इससे संबंधित अनुभूतियों को अपने साहित्य में चित्रित कर सामान्यजनों के मन में भी देशभक्ति को जागृत रखा।

गो. नी. दां. के लिए महाराष्ट्र के शिवाजी महाराज आराध्य दैवत थे। इसी श्रद्धा के कारण

उन्होंने शिवाजी महाराज का कार्य तथा उनकी महत्ता बतानेवाले साहित्य का निर्माण कर सामान्यजनों के मन में शिवप्रेम तथा देशभक्ति को जागृत रखा।

इस प्रकार दोनों लेखकों ने अपने मन में स्थित देशभक्ति को अपने साहित्य में चित्रित किया। दोनों में अंतर सिर्फ इस बात का है कि रेणु स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय रहे।गो. नी. दां. प्रत्यक्ष आंदोलनों में सक्रिय न रहते हुए भी अपने कार्य तथा लेखन द्वारा देशभक्त सिद्ध हुए हैं।

: संदर्भसूची :

1.	डॉ. हरिशंकर दुबे - उध्रुत	'फणीश्वरनाथ रेणु व्यक्तित्व एवं कृतित्व ' 'रेणु की कहानी नेपाली सानो आमा।	पृ. क्र. 23
2.	डॉ. हरिशंकर दुबे - उध्रुत	'फणीश्वरनाथ रेणु व्यक्तित्व एवं कृतित्व' 'फणीश्वर रेणु -आगिनखोर-रेखाएँ वृत्तचक्र',	पृ. क्र. 63
3.	डॉ. हरिशंकर दुबे - उध्रुत	'फणीश्वरनाथ रेणु व्यक्तित्व एवं कृतित्व 'साप्ताहिक दिनमान 27 फरवरी, 1972',	पृ. क्र. 32
4.	डॉ. हरिशंकर दुबे - उध्रुत	'फणीश्वरनाथ रेणु व्यक्तित्व एवं कृतित्व' 'फणीश्वर रेणु -आगिनखोर-रेखाएँ वृत्तचक्र',	पृ. क्र. 82
5.	डॉ. हरिशंकर दुबे - उध्रुत	'फणीश्वरनाथ रेणु व्यक्तित्व एवं कृतित्व' 'रेणु का संस्मरण और श्रद्धांजलि' 'कितनी खरी थी रेणु की यह दुनिया, श्री अश्रेय'	पृ. क्र. 83
6.	डॉ. हरिशंकर दुबे - उध्रुत	'फणीश्वरनाथ रेणु व्यक्तित्व एवं कृतित्व' 'पूर्वग्रह' (द्वैमासिक) मार्च, एप्रैल 79'	पृ. क्र. 114
7.	वीणा देव -	'आशक मस्त फकीर',	पृ. क्र. 13
8.	वीणा देव -	'आशक मस्त फकीर',	पृ.क्र. 111, 112
9.	वीणा देव -	'आशक मस्त फकीर',	पृ.क्र. 58,59
10.	डॉ. व. दि. कुलकर्णी -	लेख 'मोगरा फुलतच राहिला' रविवार सकाळ सप्तरंग पुरवणी 7 जून 1998	-
11.	वीणा देव -	'आशक मस्त फकीर',	पृ.क्र. 151
12.	बाबासाहेब पुरंदरे -	लेख एक 'बेचैने सारस्वत' रविवार सकाळ सप्तरंग पुरवणी 14 जून 1998	-

13. डॉ. व. दि. कुलकर्णी - लेख 'मोगरा फलतच राहिला'
रविवार सकाळ सप्तरंग पुरवणी 7 जून 1998

14. वीणा देव - 'आशक मस्त फकीर', पृ.क्र. 104

15. वीणा देव - 'आशक मस्त फकीर', पृ.क्र. 114

16. वीणा देव - 'आशक मस्त फकीर', पृ.क्र. 152